INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2021; 3(2): 69-73
Received: 02-05-2021
Accepted: 05-06-2021

डॉ. पूनम कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. पूनम कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

मौर्योत्तर कालीन भारत का राजनीतिक परिदृश्य

डॉ. पूनम कुमारी

सारांश
मौर्योत्तर काल में भारत की राजनीतिक एकता छिन्न–भिन्न हो गयी। मौर्यों ने अपनी शक्ति से पूरे भारत को एक सूत्र में बांध कर रखा था वह स्थिति नहीं रह गयी थी। अशोक की अहिंसक नीति एवं ब्राह्मण–धर्म के प्रति अवहेलना के भाव आदि ने क्रमशः मौर्य साम्राज्य को पतन के मार्ग पर धकेल दिया। फलतः अशोक के पश्चात के उत्तराधिकारी इस साम्राज्य को सँभाल नहीं सके और ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य की लड़खड़ाती दिवार अंततः पूरी तरह ढह गयी जब अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रक के ब्राह्मण सेनापति शुंगवंशीय पुष्यमित्र ने इस निकम्मे सम्राट को मौत के घाट उतार कर सत्ता पर कब्जा जमा लिया।

मुख्य शब्दः मौर्योत्तर कालीन भारत, राजनीतिक परिदृश्य, अशोक की अहिंसक नीति एवं ब्राह्मण–धर्म

भूमिका
मौर्यों के अवसान के बाद भारत की राजनीतिक एकता का वह अध्याय सदा–सर्वदा के लिये समाप्त हो गया। हिंदुकुश से लेकर दक्षिण में मैसूर (कर्नाटक) एव पूर्व में बंगाल तक एक ही राजवंश का आधिपत्य नहीं रह गया। उत्तर–मध्य भारत में एक के बाद एक करके कई वंशों ने शासन किया। दक्षिण में स्थानीय वंश स्वतंत्र हो बैठे। उत्तर–पश्चिम में विदेशी आक्रांताओं को भारत में प्रवेश करने का सुनहरा मौका मिल गया। सुदूर दक्षिण में भी कई स्वतंत्र राज्य उठ खड़े हुए। इस तरह मगध और पाटलिपुत्र के गौरव के दिन लद गये। इसके स्थान पर साकल, विदिशा, प्रतिष्ठान, तक्षशिला आदि राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र बन गया। [1] अतः मौर्योत्तरकालीन भारत की इन विशृंखलित राजनीतिक परिस्थितियों का अलग–अलग अवलोकन करना अपेक्षित हो जाता है।

शुंग वंश– राजसिंहासन पर बैठते ही पुश्यमित्र शुंग ने बिखरे साम्राज्य को फिर से सँभालने की कोशिश की एवं मगध के अधीन रह रहे प्राची, कोशल, आकर, वत्स एवं अवंति जैसे प्रांतों को फिर से संगठित किया। अवंति पर पूरी नजर रखने के लिये उसने आकर प्रांत के मुख्य नगर विदिशा में अपनी दूसरी राजधानी बनायी। तत्पश्चात पुष्यमित्र ने मगध से अलग हुए विदर्भ पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन होने के लिये विवश किया। पश्चात उसने उत्तर–पश्चिम की ओर ध्यान देते हुए स्यालकोट तक के समस्त प्रदेशों को अपने साम्राज्य के अधीन कर लिया। [2]
शुंग शासन काल की सबसे प्रमुख घटना थी पश्चिम से भारत पर यूनानियों का आक्रमण। उसके समकालीन पातंजलि के महाभाष्य से ज्ञात होता है कि यवनों ने चित्तौड़ के निकट माध्यमिका नगरी और अवध में साकेत का घेरा डाला किन्तु पुष्यमित्र ने उन्हें पराजित किया। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में भी यह उल्लेख आया है कि यवन आक्रमणकारियों को पुष्यमित्र के पौत्र वसुमित्र ने सिंधु के तट पर पराजित किया था। इन विवरणों से यह पता चलता है कि पुष्यमित्र ने यवनों को मगध में प्रविष्ट नहीं होने दिया। [3]
पुराणों के अनुसार पुष्यमित्र ने 36 वर्षों तक शासन किया एवं इस दौरान उसने मगध साम्राज्य को फिर से संगठित करने एवं बागी तेवर दिखलानेवाले प्रांतपतियो पर नकेल डालने का सफल एवं अथक प्रयास किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र अग्निमित्र राजगद्दी पर बैठा। पौराणिक स्रोतों के अनुसार इसके पश्चात् भी शुंगवंश के कई उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठे। लेकिन साम्राज्य के विघटन को बचा नहीं सके एवं उनका राज्य संकुचित होकर मगध की सीमाओं तक ही रह गया। ईसा पूर्व 75 में शुंग वंश का अस्त हो गया। [4]

काण्व वंश– पौराणिक स्रोतों के अनुसार शुंगवंश का अंतिम सम्राट देवभूति था। उसके वसुदेव काण्व नामक एक ब्राह्मण सचिव ने एक दिन सम्राट की हत्या कर दी एवं ईसा पूर्व 75 में मगध में काण्व वंश की नींव डाल दी।

पुराणों के अनुसार कण्व वंश में कुल चार शासक क्रमशः वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण एवं सुशर्सन हुए। इन चार राजाओं की शासन अवधि कुल 45 वर्षों की थी। इनमें वसुदेव ने 9 वर्षों तक, भूमिमित्र ने 14 वर्षों तक, नारायण ने बारह वर्षों तक एवं सुशर्मन ने दस वर्षों तक राज्य किया। यद्यपि कण्व वंश के शासनकाल के संबंध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं होता है तथापि इतना निश्चित है कि कण्ववंशी राजा निर्बल एवं अयोग्य थे एवं इनके शासनकाल में मगध का राज्य धीरे–धीरे खंडित होते हुए अंतः बिहार एवं उत्तर प्रदेश तक ही सीमित होकर रहे गये। भारत में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण अपने चरम पर पहुँच गया। ईसा पूर्व 30 तक इस वंश का शासन मगध पर कायम रहा। पुराणो के अनुसार इस वंश को आंध्र भृत्य वंशी सिमुक नामक उसके एक सेनापति ने अंत कर डाला। [5]

आंध्र–सातवाहन वंश– आंध्र–सातवाहन वंशी सिमुक ने अंतिम कण्व शासक को मौत के घाट तो उतार दिया लेकिन उसने मगध पर शासन किया हो ऐसा कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। सातवाहनों का केन्द्र बिन्दु महाराष्ट्र में प्रतिष्ठान नामक स्थान था। सातवाहनों के मूल स्थान एवं उनके वास्तविक परिचय को लेकर इतिहासकारों में आज भी मतभेद है। पुराणों में सातवाहन एवं आंध्र दोनों का प्रयोग समान अर्थ में किया गया है। विद्वानों का मत है कि वे दक्षिण के निवासी थे। वहीं कुछ विद्वानों ने इस वंश के प्राप्त अभिलेखों के आधार पर सातवाहनों को ब्राह्मण माना है। इस वंश के राजा गौतमीपुत्र के नासिक अभिलेख में उसे श्अतुलनीय ब्राह्मणश कहा गया है। इतना ही नहीं उसकी तुलना परशुराम से करते हुए उसको क्षत्रियों का अहंकार एवं मद चूर्ण करनेवाला कहा गया है। डा. राजबली पांडेय सातवाहनों के ब्राह्मण होने पर अपनी सहमति जताते हैं। यद्यपि नीलकंठ शास्त्री ने सातवाहनों के इस दावे पर शंका जाहिर की है। उनके अनुसार गौतमीपुत्र की माता ब्राह्मणी थीं। प्रायः उसने स्वयं को ब्राह्मण कहा है। लेकिन शास्त्री की यह शंका नाजायज है। यदि वह क्षत्रिय होता तो फिर अपने स्वजातियों का मानमर्दन कर कभी प्रसन्न नहीं होता। पुनः यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि एक क्षत्रिय पुरुष द्वारा अपने से उच्च वर्ण की कन्या के साथ विवाह को शास्त्र एवं समाज कभी सहमति नहीं प्रदान करता। ऐसे विलोम विवाह से उत्पन्न संतान को पंचम वर्ण में रखने की बात हिन्दू धर्मशास्त्रों में कही गयी है। जाहिर है कि सातवाहन जन्मना ब्राह्मण थे। उनके कर्म अवश्य ही क्षत्रियों की तरह थे। डा. एच.सी. राय चौधुरी भी सातवाहनों को ब्राह्मण मानते हैं तथापि उनका मत है कि सातवाहनों में नागर रक्त का कुछ मिश्रण अवश्य था। [6]

शुंग एवं कण्व के बाद तृतीय ब्राह्मण वंशी आंध्र–सातवाहनों के राजवंश का अधिष्ठाता सिमुक था। सिमुक के बाद उसका भाई कृष्ण, उसका उत्तराधिकारी शातकर्णि था जिसका राज्यकाल भी अठारह वर्षों तक रहा। लेकिन उसके समय में इस राजवंश की स्थिति कुछ ढुवाडोल रही। अभिलेखीय एवं पुरातात्विक साक्षयों के अनुसार क्षहराट वंश के शक क्षत्रपों ने सातवाहनों को पश्चिम दक्कन से निष्कासित कर दिया। इस मध्य इस राजवंश में कई दुर्बल एवं अयोग्य राजा हुए। सातवाहनों ने अपनी

प्रतिष्ठा की पताका अपने वंश के महानतम शासक गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी के नेतृत्व में फहराया। गौतमीपुत्र के नासिक शिलालेख से यह जानकारी मिलती है कि उसने शकों, यवनों, पहलवों, तथा क्षहराटों का सर्वनाश कर अपने कुल के गौरव की पुनः स्थापना की। शकों से उसने उत्तरी महाराष्ट्र एवं कोंकण, नर्मदा की घाटी एवं सौराष्ट्र, मालवा एवं पश्चिम में राजपूताना छीन लिये। उसका राज्य उत्तर में मालवा एवं दक्षिण में कर्नाटक तक फैला हुआ था।श्श गौतमी बलश्री के नासिक अभिलेख में स्पष्ट रूप ये यह उल्लिखित है कि उसके पुत्र के घोड़े तीन महासागरों का जल पीते हैं। गौतमीपुत्र शातकर्णि के सिक्के आंध्रप्रदेश में भी मिले हैं जिस आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि उसने ही आंध्रप्रदेश को जीतकर अपने राज्य में मिलाया था। [7]

गौतमीपुत्र शातकर्णि ने लगभग चौबीस वर्षों (106 से 130 ई.) तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र वशिष्ठीपुत्र पुडुमावी उत्तराधिकारी बना। पुडुमावी का शकों के कार्टामक वंश से कड़ा संघर्ष हुआ जिसमें उसकी पराजय हुई शंकों ने सातवाहन साम्राज्य के अनेक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। [8]

पुडुमावी के बाद उसका पुत्र शिवश्री सातकर्णी उसका उत्तराधिकारी बना। उसके कन्हेरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने शक महाक्षत्रप रुद्रदामा की पुत्री से विवाह किया था। रुद्रदामा के गिरनार अभिलेख में भी इस बात की चर्चा है कि उक्त शक शासक ने दक्षिणापथ के शातकर्णी को दो बार पराजित किया। लेकिन निकट सम्बन्धी होने के कारण उनका विनाश नहीं किया। रुद्रदामा की मृत्यु के बाद सातवाहन शासकों ने शक प्रदेशों पर आक्रमण कर अपने कई खोये हुए प्रदेश प्राप्त कर लिये। [9]

इस सातवाहन वंश का अंतिम प्रतापी सम्राट यज्ञश्री शातकर्णी था जिसने तीस वर्षों (165 से 195 ई.) तक शासन किया। उसने अपने साम्राज्य की सीमा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक विस्तारित किया। किंतु यज्ञश्री के बाद के सातवाहनवंशी राजा अयोग्य निकले। तीसरी शताब्दी आते–आते सातवाहन राज्य छिन्न–भिन्न होने लगा। सभी स्थानीय शासक अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने लगे। आमीरों ने महाराष्ट्र में अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। कर्नाटक के क्षेत्र में कुंतल एवं चुटु एवं उसके पश्चात कंदम शक्तिशाली बन बैठे। अंत में पल्लवों ने उनकी सत्ता को समाप्त कर दिया। [10]

सुदूर दक्षिण में राज्यों का उदय– जिस समय उत्तर एवं मध्य भारत के रंगमंच पर शुंग, कण्व, सातवाहन आदि अपनी–अपनी भूमिका का निर्वाह कर पृष्ठभूमि में जा रहे थे एवं उत्तर–पश्चिम में यवनों एवं म्लेच्छों का शासन क्रमशः स्थापित हो रहा था उस समय सुदूर दक्षिण में तीन प्रमुख राज्य क्रमशः पांड्य, चोल तथा चेर का उद्भव एवं विकास हो रहा था। पांड्यों का उल्लेख सर्वप्रथम मेगास्थनीज के यात्रा विवरण में मिलता है। उसने लिखा है कि पांडय राज्य मोतियों के लिये प्रसिद्ध है। साथ ही उसके विवरण के अनुसार पांड्य राज्य का शासन एक महिला के हाथों में था। इस विवरण से प्रतीत है कि पांड्य एक मातृ सत्तात्मक राज्य था। [11]

पांड्य राज्य की अवस्थिति भारतीय प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व में थी। वर्तमान तमिलनाडु राज्य के तिन्नवेली, रामनद एवं मदुरा जिले प्राचीन पांड्य राज्य के क्षेत्र थे। इसकी राजधानी मदुरा थी। तमिल के प्राचीन संगम साहित्य में इस राज्य का विवरण प्राप्त होता है साथ ही इस राज्य के एक–दो शासकों का नाम भी उल्लिखित मिलते हैं। पांड्य का कोई सिलसिलेवार इतिहास नहीं प्राप्त होता है। लेकिन संगम साहित्य से इतना जरूर पता चलता है कि पांड्य एक समृद्ध राज्य था। पांड्य के राजागण रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार करते थे जिसमें उन्हें बहुत ही लाभ होता था। पांड्य राजाओं ने रोमन सम्राट ऑगस्टस के दरबार में अपने राजदूत भी भेजे थे। [12]

चोल राज्य की अवस्थिति पांड्य राज्य क्षेत्र के पूर्वोत्तर कोने में थी। पेनार एवं वेलार नदियों के बीच अवस्थित चोल राज्य को मध्यकाल के आरंभ में 'चोल मंडलम्' (कोरो मंडल) के नाम से जाना जाता था। तमिल के प्राचीन संगम साहित्य से ही चोल राज्य के इतिहास की थोड़ी–बहुत जानकारी प्राप्त हो पाती है। चोल की राजधानी का नाम उरेऊ था जो कपास के व्यापार का प्रख्यात केन्द्र था। संगम साहित्य से प्राप्त विवरण के अनुसार ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य में एलारा नामक एक चोल राजा ने श्रीलंका पर न केवल विजय हासिल की थी बल्कि वहाँ उसने पचास वर्षों तक शासन भी किया था। चोल राज्य का स्पष्ट

इतिहास ईसा की दूसरी शताब्दी से दृष्टिगोचर होता है। इस सदी में चोल की गद्दी पर कारिकाल नामक एक प्रख्यात राजा आसीन हुआ। उसने चोल राज्य की नयी राजधानी बसायी जिसका नामकरण उसने पुहार किया। पुहार की पहचान काबेरी पट्टनम से की गयी है जो वाणिज्य–व्यापार का प्रख्यात केन्द्र था। नगर की सुरक्षा के लिये कारिकाल ने काबेरी नदी पर एक सौ साठ किलोमीटर लंबे बांध का निर्माण कराया। चोल राज्य की समृद्धि वा एक मुख्य स्रोत सूती वस्त्रों का व्यापार था। चोल के अपने कई बंदरगाह थे। उसके पास कुशल नौसेना एवं व्यापारिक जहाज थे। [13]

चेर राज्य की अवस्थिति वर्तमान केरल राज्य में थी। यह पांड्य राज्य के पश्चिम एवं उत्तर में था। इस राज्य का भू क्षेत्र समुद्र एवं पहाड़ों के बीच का सँकरा भाग था जिसमें अधिकांश अंश केरल के थे एवं कुछ अंश आधुनिक तमिलनाडु राज्य के भी पड़ते थे। ईसा की पहली सदी में चेर राज्य की दक्षिण की राजनीति में उतने ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे जितने कि पांड्य एवं चोल। चोल की पहचान भी एक समृद्ध राज्य के रूप में थी और इस समृद्धि का कारण रोमन साम्राज्य से उनका व्यापार था। [14]

पांड्य, चोल और चेर तीनों राज्यों का इतिहास वस्तुतः आपसी संघर्ष का इतिहास है। तीनों की नजर अपने से दक्षिण समुद्र में स्थित श्रीलंका द्वीप पर लगी रहती थी। तीनों की पहचान एक व्यापारिक राज्य के रूप में थी। तीनों की बेतहासा समृद्धि का राज रोमन साम्राज्य के साथ उनके व्यापार को लेकर थी। [15]

विदेशियों का आक्रमण– चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने बाहुबल से न केवल भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बांधा बल्कि विदेशियों के घुसपैठ वाले उत्तर पश्चिमी क्षेत्र को भी मजबूती प्रदान की एवं भारत को हिन्दुकुश तक ले जाकर उसे एक प्राकृतिक सीमा भी प्रदान की। लेकिन अशोक के समय मे आकर अहिंसा की जो नीतियाँ अपनायी गयी उसके कारण साम्राज्य कमजोर पड़ने लगा। अशोक के उत्तराधिकारी तो इस लायक भी नहीं रह गये कि वे अपने पूर्वजों द्वारा बनाये गये इस साम्राज्य की रक्षा कर सकें। फलतः पूर्वी भारत, मध्य भारत एवं दक्षिण में क्रमशः शुंग, कण्व एवं सातवाहन राज्य उठ खड़े हुए एवं पश्चिमोत्तर भारत को असुरक्षित एवं अनाथ जानकर मध्य एशिया से कई विदेशी जातियों ने आकर यहाँ अपनी सत्ता स्थापित की। [16]

बैक्ट्रियार्ड यूनानियों के हमले– भारत के इस उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में मौर्योत्तर काल की सबसे प्रमुख राजनीतिक घटना थी विदेशियों का आक्रमण। इन विदेशी आक्रांताओं की सूची में पहला नाम बैक्ट्रिया के यूनानियों का आता है। भारतीय साहित्य में यवन के नाम से संबोधित इन यूनानियों ने नंद वंश के समय में सिकंदर के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया था। सिकंदर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ली थी जिसमें भारत का भी कुछ भाग शामिल था। यद्यपि सेल्यूकस जो सिकंदर का उत्तराधिकारी था उसने हिंदुकुश तक का क्षेत्र चंद्रगुप्त मौर्य को सौंप दिया था। लेकन मध्य एशिया का जो उसका साम्राज्य था वह उसके अवसान के बाद विघटित होने लगा था। उसके कई क्षत्रपों ने आगे चलकर स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर लिया। सिकंदर साम्राज्य के एक प्रांत बैक्ट्रिया के प्रांतपति डियोडोटस ने ईसा पूर्व 250 में स्वयं को स्वतंत्रत घोषित कर लिया। उसके उत्तराधिकारी डियोडोटस द्वितीय ने सिकंदर द्वारा सेल्युकस को प्रदत्त सामाजय से स्वयं को पूर्णतः अलग कर लिया। [17]

डियोडोटस द्वितीय के बाद के एक उत्तराधिकारी डेमेट्रियस प्रथम (ई.पू. 220 से 175) ने मौके का लाभ उठाते हुए भारत के असुरक्षित उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र पर आक्रमण किय। ई.पू. 183 में उसने पंजाब के एक बड़े भाग पर कब्जा जमा लिया एवं साकल में अपनी राजधानी बनायी। डेमोट्रियस ने भारतीय राजा की उपाधि धारण की एवं युनानी तथा खरोष्ठी लिपियों में अपने सिक्के चलाये। [18]

डेमोट्रियस प्रथम जब भारत में जीते अपने राज्य को सुदृढ़ करने में लगा हुआ था ठीक उसी समय उसके मूल प्रदेश बैक्ट्रिया में उसके एक सेनानायक यूक्रेटाइड्स ने विद्रोह कर दिया। फलतरू डेमोट्रियस को बैक्ट्रिया से हाथ धोना पर पड़ गया। युक्रेटाइड्स ने केवल बैक्ट्रिया से ही संतोष नहीं किया। उसने डेमोट्रियस के भारतीय राज्य को भी अपना निशाना बनाया एवं एक बड़े क्षेत्र पर अधिकार जमाकर उसने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी तक्षशिला में बनायी। यूक्रेटाइड्स ने भी अपने नाम से सिक्के चलाये। उसके सिक्के बैक्ट्रिया के अलावे सिस्तान, काबूल की घाटी, कपिश एवं गंधार में भारी संख्या में प्राप्त हुए जो लाहौर म्यूजियम एवं ब्रिटिश म्यूजियम में है। सिक्कों की प्राप्ति के इस आधार पर यह अनुमान लगता है कि यूक्रेटाइड्स का राज्य पश्चिमी पंजाब में झेलम तक था। डेमेट्रियस का राज्य पूर्वी पजाब एवं सिंध पर था। [19]

इस प्रकार मौर्योत्तर काल में बैक्ट्रियाई यूनानियों के दो अलग–अलग वंशों डेमेट्रियस वंश एवं यूक्रेटाइड्स वंश के राज्य भारत में स्थापित हो गये। इन यूनानी वंशों को इतिहासकर ने 'हिन्द–यूनानी' अथवा 'इंडो–ग्रीक्स' कहकर संबोधित किया है। इस हिन्द–यूनानी यवन राजवंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा मीनांडर हुआ जो बौद्ध ग्रंथों में मिलिन्द के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी राजधानी शाकल थी जो शिक्षा एवं व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। उसकी राजधानी के आधार पर इतिहासकारों का अनुमान है कि मीनांडर डेमेट्रियस वंश का था। मीनांडर का समय संभवतः (ई.पू. 160–120) था। मीनांडर के सिक्के भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भी मिले हैं। काबुल से लेकर मथुरा एवं बुंदेलखंड तक उसके सिक्के प्राप्त हुए है। पेरिप्लस ने भी अपने विवरण में लिखा है कि उसके सिक्के भृगुकच्छ के बाजारों में खूब चलते थे। [20]

पार्थियाई या पहलवों के हमले– सिकंदर के साम्राज्य का एक प्रांत पार्थिया था। जिस समय बैक्ट्रिया के प्रांतपति ने अपने स्वतंत्रता की घोषणा की थी उसी समय पार्थिया के प्रांतपति औरेक्ट्स ने भी स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर लिया। ई.पू. की पहली शताब्दी में प्रायः पलवों या पार्थियनों ने भी उत्तर–पश्चिम भारत पर आक्रमण कर यहाँ अपने राज्य स्थापित किये। पल्लव शक्ति को व्यापक बनानेवाला मिथ्रेडेट्स प्रथम था जो यूक्रेटाइड्स का समकालीन था। सीस्तान, काबूल, गंधार आदि से प्राप्त पह्लवों के सिक्कों के आधार पर यह अनुमान लगता है कि उसने इन क्षेत्रों से बैक्ट्रियाई ग्रीकों को भगाकर स्वयं शासन किया था। भारत में अपने जीते क्षेत्र पर शासन करनेवाला पहला पहलवी शासक माउस था जिसका समय ई.पू. 90 से 70 इतिहासकारों ने निर्धारित किया है। स्वात की घाटी तथा गंधार से प्राप्त सिक्कों में उसका नाम खरोष्ठी लिपि में मोय एवं ग्रीक लिपि में माउस उत्कीर्ण है। पह्लव वंश का सर्वाधिक प्रख्यात शासक गोंडोफर्निस (20–41 ई.) हुआ जिसने अपने साम्राज्य का विस्तार पूर्वी ईरान तक किया एवं यूनानी राजा हर्मियस से उसने उत्तरी काबुल घाटी जीत लिया। पार्थियन राज्य का अंत कुषाणों ने किया। [21]

शक जाति के हमले– जिस समय भारत में बैक्ट्रिया के यूनानी राज कर रहे थे उस समय मध्य एशिया में कई कबीलों का आना प्रारंभ हो गया था। सीथियन नामक कबीला जिन्हें भारतीय स्रोतों में शकों का नाम दिया गया है वे मध्य एशिया के बैक्ट्रिया में आये उस पर अधिकार कर लिया। किंतु उनके पीछे एक अन्य यू–ची कबीला पड़ा हुआ था। अतः आगे बढ़ते हुए उन्होंने पहले पार्थिया पर और फिर भारत के हिंद–यूनानी राज्यों पर आक्रमण करते हुए उस पर अधिकार जमाना शुरू किया। भारत में आनेवाले शक राजा अपने को क्षत्रप कहते थे। भारत में जब

शकों का आगमन हुआ उस समय ये दो शाखाओं में विभक्त हो गये। एक शाखा उत्तरी क्षत्रप कहलाते थे जो तक्षशिला एवं मथुरा में थे एवं दूसरे पश्चिमी क्षत्रप कहलाते थे जो नासिक एवं उज्जैन में थे। कालांतर में शकों की ये दो शाखाएँ पाँच अलग–अलग शाखाओं में विभक्त हो गयी जिनकी एक राजधानी भारत में और एक राजधानी अफगानिस्तान में थी। [22]

शकों की उज्जयिनी शाखा के क्षत्रप स्वयं को कार्द्धमक क्षत्रप कहते थे। इस शाखा का पहला स्वतंत्र शासक चष्टण हुआ। उसने अपने अभिलेखों में शक संवत् का प्रयोग किया है। अभिलेखों के अनुसार इस शासक ने 130 ई. से 188 ई. तक राज्य किया। इस शाखा का सबमें प्रसिद्ध शासक रुद्रदामा हुआ। उसके जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि उसके राज्य में पूर्वी एवं पश्चिमी मालवा, द्वारका के आसपास का क्षेत्र, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंधु नदी का सुहाना, उत्तरी कोंकण, मारवाड़, आदि प्रदेश शामिल थे। रुद्रदामा या फिर उसे पूर्वजों ने मालवा, कोंकण सौराष्ट्र आदि प्रदेशों को सातवाहनों से छीना था। रुद्रदामा ने दो–दो बार अपने समकालीन सातवाहन शासक शातकर्णी को हराया था। लेकिन दामाद होने के कारण उसे नष्ट नहीं किया था। शकों का शासन भारत में चौथी शताब्दी तक चलता रहा। गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों का उन्मूलन कर उसके राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया। [23]

कुषाणों के हमले– मौर्योत्तरकालीन विदेशी जातियों के आक्रमणों की कड़ी में कुषाण अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। कुषाण वस्तुतः यू–ची कबीले से सम्बद्ध थे जिन्हें तोखारी भी कहा जाता था। लगभग ईसा पूर्व 165 में पड़ोसी कबीला हिंग–नू ने यूचियों को पश्चिमी चीन से खदेड़ दिया। गृह निर्वासन के इस काल में यू ची कबीला दो भागों से विभक्त हो गया। प्रथम कनिष्ठ यू ची कबीला तिब्बत की ओर रवाना हो गया जबकि द्वितीय ज्येष्ठ यूचीक कबीला पश्चिम की ओर बढ़ा। ज्येष्ठ यूचियों ने पश्चिम में बैक्ट्रिया, पार्थिया आदि के शासकों को परास्त किया। पाँच कुलों में विभक्त ज्येष्ठ यूची कबीले के एक कुल का नाम कुषाण था। कुषाण कुल का एक सेनानायक कुजुक कडफिशस ने पाँचों कुलों को संगठित किया एवं भारत की ओर बढ़ा जहाँ उसने काबुल एवं कश्मीर में अपनी सत्ता स्थापित की। कडफिशस ने अपने नाम से सिक्के भी चलाये जिसमें उसने अपने को श्महाराजाधिराजश कहा है। 64 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र विमा कडफिशस गद्दी पर बैठा। उसने सिंध नदी को पारकर तक्षशिला एवं पंजाब पर अधिकार जमाया। विमा कडफिशस ने भी अपने नाम से सिक्के जारी किये जिसमें उसने अपने लिये महाराज, महाराजाधिराज महीश्वर, सर्वलोकेश्वर जैसे विरुद उत्कीर्ण करबाये। [24]

समकालीन परिस्थितियों में कुषाण साम्राज्य ने अपनी महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ बना ली थीं। एक तरफ पूर्व में चीन का किलाबंद साम्राज्य था। इसके पश्चिम में पार्थियनों का साम्राज्य था। रोमन साम्राज्य अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ रहा था। पार्थिया एवं रोम में परस्पर शत्रुता थी। रोम साम्राज्य चाहता था कि वह चीन से व्यापार के लिये ऐसे मार्ग का अवलंबन करे जो पार्थिया से होकर न गुजरता हो। फलतः रोम साम्रज्य ने कुषाण की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाया क्योंकि चीन जानेवाले तीनों प्रमुख श्रेशम मार्गश पर कुषाण का नियंत्रण था। इस महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण कुषाण साम्राज्य व्यापार के बड़े केन्द्र के रूप में अपनी मान्यता स्थापित कर चुका था। [26]

कुषाणों ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति को न केवल अपनाया। बल्कि इसे काफी प्रोत्साहित भी किया। कुषाणों ने मौर्यो के बाद एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ऐसी सुव्यवस्था लागू की कि लोगों को अब विदेशी आक्रमणों का भय नहीं रह गया था। चारों ओर शांति और सुव्यवस्था लागू हुई। राजनीतिक शांति के इस युग में धर्म, कला, साहित्य, उद्योग, विज्ञान, व्यापार आदि सभी क्षेत्रों में भारत ने काफी उन्नति की। [27]

कनिष्क के बाद उसका पुत्र हुविष्क कुषाण साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। वह भी अपने पिता की तरह कला, धर्म एवं संस्कृति का प्रेमी था। लेकिन उसमें अपनी पिता जैसी योग्यता नहीं थी। नासिक के शक शासक रुद्रदामा ने उसे पराजित कर मालवा पर फिर से कब्जा कर लिया। इस वंश का अगला शासक वासुदेव हुआ जो विष्णु एवं शिव का उपासक था। उसके समय में उत्तर–पश्चिम का एक बहुत बड़ा भाग कुषाणों के हाथ से निकल गया। परवर्ती कुषाण शासक अत्यंत ही कमजोर निकले। तीसरी शदी के मध्य में ईरान के सासानियों ने अफगानिस्तान और सिंधु के पश्चिम के क्षेत्र कुषाणों से छीन लिये। वहीं पूर्व में नाग भार शिव वंश के उदय ने कुषाण साम्राज्य में पलीते लगाने शुरू कर दिये। शीघ्र ही कुषाण साम्राज्य कर भारत से नामो–निशान मिट गया। [28]

निष्कर्षतः देखा जाय तो ई.पू. 187 में मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद से लेकर ईसा की चौथी शताब्दी के प्रथम द्वितीय दशकों में गुप्त वंश की स्थापना से पूर्व का यह कालखंड राजनीतिक अस्तव्यस्तता एवं राजनीतिक प्रयोगों का काल खंड रहा। विभिन्न भारतीय शक्तियों एवं विदेशी शक्तियों के लिये भारत प्रयोग भूमि बनी रही। शक, कण्व एवं सातवाहनों में वह कूबत नहीं थी कि वे मौर्यों की तरह पूरे भारत में एक सूत्र में पिरोकर रख सकें। एक वृहत् साम्राज्य बनाने के दिन लद चुके थे एवं उनका स्थान छोटे–छोटे साम्राज्यों ने ले लिया था। लेकिन ये छोटे साम्राज्य भी सुरक्षित नहीं थे। उत्तर–पश्चिम से एक बार सिकंदर ने भारत में प्रवेश क्या कर लिया विदेशियों के लिये यह मार्ग आसान हो गया। केन्द्रीय सत्ता के कमजोर पड़ते ही एक के बाद एक करके बैक्ट्रियाई–ग्रीक, पार्थियन, शक एवं कुषाणों ने इसी रास्ते से होकर भारत में प्रवेश किया एवं यहाँ अपनी सत्ता जमाते रहे। वस्तुतः भारतीय इतिहास का यह मौर्योत्तर काल राजनीतिक प्रयोगों का काल था जिसमें वृहत् साम्राज्य की अवधारणा समाप्त हो चुकी थी और उसका स्थान छोटे–छोटे साम्राज्य लेते रहे। इस कालावधि में तमाम देशी एवं विदेशी शक्तियों ने अपने बाहुबल से साम्राज्य स्थापित किये। लेकिन इस लघु साम्राज्य के युग में भी भारत ने सभी क्षेत्रों में अपूर्व उन्नति हासिल की। शास्त्रों की टकराहट के बावजूद भी उद्योग एवं व्यापार निरंतर प्रगति के पथपर बढ़ते रहे। चतुर्दिक आर्थिक समृद्धियाँ बनी रही। व्यापार–वाणिज्य के फलक क्रमशः विस्तृत होते चले गये और अंततः इन सब तत्त्वों ने मिलकर भारत में नगरीकरण को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया।

संदर्भ :

1. सुधाकर चट्टोपाध्याय, अली हिस्टी ऑफ नॉर्थ इंडिया, कलकत्ता, 1958, पृ.– 102
2. एच.सी. सयज चौधुरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया, कलकत्ता, 1953, पृ.– 196
3. कालिदास ग्रंथावली, हिन्दी अनु.– एस.आर. चतुर्वेदी, बंबई, 1950, पृ.– 312
4. एफ.ई. पॉर्जिटन, डायनास्टीज ऑफ कलि एज, लंदन, 1913, पृ.– 32
5. एच.सी. सयज चौधुरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया, कलकत्ता, 1953, पृ.– 211
6. वही, पृ.– 213
7. वही, 217
8. के.ए. नीलकंठ शास्त्री, ए कम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया (द्वितीय खंड), बम्बई, 1957, पृ.– 318
9. एच.सी. सयज चौधुरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया, कलकत्ता, 1953, पृ.– 219
10. वही, पृ.– 222
11. रामारण शर्मा, प्राचीन भारत, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली,

1995, पृ.– 172–173
12. जी. यज्दीन, दी अर्ली हिस्ट्र ऑफ द डेक्कन, ऑक्सफोड, 1960, पृ.– 46
13. वही, पृ.– 57
14. वही, पृ.– 72
15. के.ए. नीलकंठ शास्त्री, ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवसीटी प्रेस, 1958, पृ.– 176
16. रोमिला थापर, अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ मौर्याज, ऑक्सफोर्ड, 1973, पृ.– 127
17. ए.के. नारायण, द इंडो–ग्रीक्स, लंदन, 1957, पृ.– 32
18. ए. कनिंघम, क्वायंस ऑफ अलेक्जेंडर्स सक्सेसर्स इन द ईस्ट, लंदर, 1873, पृ.– 107
19. ए.के. नारायण, द इंडो–ग्रीक्स, लंदन, 1957, पृ.– 66
20. पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रिअन सी. (अनु.) डब्लू.एच. स्कोफ्फ लंदन, 1912, पृ.– 122
21. एच.सी. सयज चौधुरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया, कलकत्ता, 1953, पृ.– 267
22. रामारण शर्मा, प्राचीन भारत, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1995, पृ.– 149
23. एच.सी. सयज चौधुरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया, कलकत्ता, 1953, पृ.– 270
24. बी.एन. पुरी, इंडिया अंडर द कुषान्स, बंबई, 1965, पृ. – 72
25. बी. चट्टोपाध्याय, द एज ऑफ द कुषान्स द कुषान्स, कलकत्ता, 1967, पृ.– 107–124
26. वही, पृ.– 125–132
27. बी. चट्टोपाध्याय, कुषान्स स्टेट एंड इंडियन सोसाइटी, कलकत्ता, 1975, पृ.– 174
28. बी.एन. मुखर्जी, द डिसइंट्रग्रेसन ऑफ द कुषान्स इंपायर, 1976, पृ.– 208